नए भारत की चुनौतियां और आरएसएस

जगदीश्वर चतुर्वेदी

मौजूदा दौर सांप्रदायिक ताकतों के आक्रामक रवैय्ये का दौर है। इस दौर को विराट पैमाने पर माध्यमों की क्षमता ने संभव बनाया है। सांप्रदायिक ताकतों, विशेषकर हिन्दुत्ववादी संगठनों की सांप्रदायिक विचारधारा को व्यापक पैमाने पर प्रचारित-प्रसारित करने में परंपरागत और इलैक्ट्रॉनिक संचार माध्यमों की प्रभावी भूमिका रही है। हिंदुस्तानी ताकतों ने किस तरह की माध्यम रणनीति अख्तियार की, उसका परिप्रेक्ष्य और विचारधारात्मक पक्ष क्या रहा है? इसका समग्रता में मूल्यांकन किया जाना चाहिए। ऋस्स की माध्यम रणनीति पर विचार करते समय पहला प्रश्न यह उठता है कि अयोध्या, मथुरा, वाराणसी का ही चयन क्यों किया गया? इनमें से अयोध्या को ही सांप्रदायिक आंदोलन का केंद्र क्यों चुना गया? क्या यह चयन किसी वैचारिक योजना का अंग है?

मेरा मानना है कि सांप्रदायिक ध्रुवीकरण की दिशा में यह महत्वपूर्ण कदम है. इसका प्रेरक तत्व हिटलर की रणनीति से लिया गया है।

हिटलर ने मीन कॉम्फ में लिखा था कि किसी आंदोलन के लिए स्थान विशेष की भौगोलिक, राजनीतिक महत्ता का महत्वपूर्ण स्थान होता है। स्थान विशेष के कारण ही मक्का या रोम का महत्वपूर्ण स्थान है। किसी स्थान विशेष को केंद्र में रखकर ही एकता को स्वीकृति मिलती है। इस एकता को अर्जित करने के लिए हिटलर ने म्यूनिख का चयन किया।

कैनेथ बुक ने 'रेहटोरिक ऑफ हिटलर्स बैट्ल्स' में रेखांकित किया कि म्यूनिख का चयन धार्मिक दृष्टि एवं पद्धति के आधार पर किया गया। यह भयानक प्रभावकारी औजार साबित हुआ। खासकर जब कई देशों में पूंजीवादी कमजोर हो रहा था।

हिटलर ने जब म्यूनिख को केंद्र बनाया तो आर्य श्रेष्ठता को जर्मनों से जोड़ा और स्वतस्फूर्त ढंग से यहूदी विरोधी भावनाओं को उभारा और संसदीय प्रणाली पर हमला किया.।

हिटलर का मानना था कि धार्मिक महत्व के स्थान को आंदोलन का केंद्र चुनने से आर्य एकता, सम्मान, श्रेष्ठत्व अर्जित करने के लिए आंदोलन सफलता अर्जित करेगा।

हमारे यहां आरएसएस ने इसी धारणा से प्रेरणा लेकर साम्प्रदायिक एकता के लिए धार्मिक स्थानों का चयन किया है। हिटलर ने आर्यों की मर्यादा एवं सम्मान को धार्मिक एवं मानवीय स्तर पर अर्जित करने एवं इनके श्रेष्ठत्व की धारणा पर बल दिया, हमारे यहां संघ ने हिंदू सम्मान एवं हिंदुओं की मर्यादा की रक्षा को मुद्दा बनाया। उनके माध्यम नजरिए का अध्ययन करें तो पाएंगे कि वे भी हिंदुओं की उपेक्षा, तिरस्कार एवं अपमानजनक स्थितियों का बार-बार वर्णन करते हैं। हिंदू को भारत का आदिम निवासी मानते हैं और गैर हिंदुओं को, विशेषकर अल्पसंख्यकों को हिंदूराष्ट्र से एकात्म स्थापित करने का आह्वान करते हैं। ऋस्स के अखबार पांचजन्य के अपना 'भारत अंक' (21 मार्च 1993) में ऋस्स के प्रमुख सिद्धांतकार के .सी.सुदर्शन का 'अगली सदी का हिंदूराष्ट्र' शीर्षक लेख छपा है. इसमें वे लिखते हैं,'मुसलमान और ईसाई भी अपने आपको इस धरती के और यहां के पूर्वजों के साथ जोड़ें. देश के सांस्कृतिक प्रभाव में अपने आपको समरस कर लें. हिदूराष्ट्र की गौरव वृद्धि में योगदान दें।'

आरएसएस एवं उसके सहयोगी संगठन, दीनदयाल उपाध्याय के सएकात्मवाद का बार-बार प्रचार करते हैं। सुदर्शन ने अपने लेख में लिखा कि 'जहां तक व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व और अधिकार का प्रश्न है, हिंदू चिंतन नहीं मानता कि व्यक्ति का कोई सर्वतंत्र स्वतंत्र अस्तिव है।'

उल्लेखनीय है हिटलर भी व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व को अस्वीकार करता था और दीनदयाल उपाध्याय का भी यही दृष्टिकोण था। व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व को अस्वीकार करने का अर्थ है भारतीय सनवजागरण की उपलब्धियों का अस्वीकार एवं विरोध करना।

भारतीय नवजागरण एवं यूरोपीय नवजागरण, दोनों के प्रभाववश व्यक्ति की स्वतंत्र पहचान, अधिकार एवं ज्ञान-विज्ञान की उपलब्धियां सामने आई। हिटलर ने उन सबको नष्ट किया।

सांप्रदायिक ताकतें भारत में भी ऐसा ही करने का सपना देख रही हैं. एकात्मवाद मूलत सांस्कृतिक, जातीय, भाषायी वैविध्य को अस्वीकार करता है। हिंदू सांप्रदायिक चेतना के साथ एक रस हो जाने का संदेश देता है।

सांप्रदायिक ताकतों की माध्यम रणनीति की धुरी है धर्म का भ्रष्टीकरण। इनकी धार्मिक धारणाओं का धर्म की बुनियादी धारणाओं से दूर-दूर तक संबंध नहीं है। फासिज्म की यह रणनीति जर्मनी में भी थी। उसने धर्म का 'डि स्टैंडराजइजेशन' किया था. कैनेथ बुक ने लिखा "भ्रष्टाचार उसकी धुरी था." हिटलर मानता था जो सबसे अच्छी चीज है उसे भ्रष्ट कर दो तो वह सबसे घृणित कार्य भी होगा। कैनेथ बुक की राय है कि "धर्म को भ्रष्ट करने वाले आज दुनिया में सबसे भयानक माने जाते हैं। वे धार्मिक सिद्धांतों के अंदर विकृतियां पैदा करके नई-नई व्याख्याओं को जन्म देते है।

हिंदू धर्म का भ्रष्टीकरण सांप्रदायिक ताकतों का मूल लक्ष्य है। इससे धार्मिक एवं सामाजिक परंपराओं

को विद्रूपीकरण की दिशा में ले जाने में मदद मिलती है। वे हिटलर की तरह ही धर्म को जीवन में सर्वोच्च स्थान देते हैं। हिटलर लोकतंत्र विरोधी था हिंदू सांप्रदायिक ताकतें भी लोकतंत्र का विरोध करती हैं। सुदर्शन ने लिखा 'धर्म के नियम का उल्लंघन करने से यह सामंजस्य टूटता है और अव्यवस्था फैलती है।' वे यह भी मानते हैं कि 'दसवीं सदी के आसपास पुनः पतन की प्रक्रिया आरंभ होती है और 15 अगस्त 1947 को यह प्रक्रिया पतन के निम्नतम बिंदु पर पहुंचती है जब वेद काल से लेकर आज तक संजोई भारत माता की मूर्ति खंडित होती है।' यानी सार्वभौम स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में भारत का उदय, पतन का निम्नतम बिंदु है. इस तरह आरएसएस के सिद्धांतकार, संविधान एवं उसके बुनियादी सिद्धांतों की अवमानना व्यक्त करते हैं।

आरएसएस की माध्यम रणनीति का एक पहलू यह भी है कि वे अपने विरोधियों के मंतव्य, दृष्टिकोण आदि को विकृत रूप में पेश करते हैं। साथ ही, पत्र-पत्रिकाओं में ज्यादा से ज्यादा जगह घेरने के लिए प्रतिदिन विभिन्न संगठनों के नामों से ढेर सारी प्रेस विज्ञप्तियां देते हैं। इंटरनेट पर उनके स्वयंसेवक गंदी-गंदी टिप्पणियां लिखते हैं वे अफवाहों एवं तथ्यहीन बातों का सघन प्रचार करते हैं, इसकी 'पुनरावृत्ति करते हैं। 'पुनरावृत्ति' एवं नारेबाजी की शैली का जन सभाओं एवं माध्यमों में प्रयोग करते हैं. 'पुनरावृत्ति की शक्ति' मूलतः विज्ञापन की पर्सुएशन क्षमता का अनुकरण है। हिटलर ने अपनी कृति मीन कॉम्फ एवं जनसभा के भाषणों में इसका प्रभावी प्रयोग किया था। उल्लेखनीय है नाजी प्रचार को पुनरावृत्ति शक्ति के प्रयोग का आदर्श नमूना माना जाता है।

आरएसए –भाजपा के नेताओं ने माध्यमों एवं जनसभाओं में मूलत: दो विषयों पर जमकर बोला है.। प्रथम, मुसलमानों के बर्बर अत्याचारों और मुगल शासकों की असहिष्णुता. दूसरा, हिंदू एकता. हिंदुत्ववादी अपने नेतृत्व को 'नार्मल' और विपक्ष को 'एबनार्मल' कहते हैं। वे आर्थिक कठिनाइयों से ज्यादा महत्वपूर्ण 'हिंदू एकता' एवं 'हिंदू गौरव' को स्थान देते हैं। 'हिंदू' को वे रचनात्मक मानते हैं। यह भी बताते हैं कि हिंदुओं की परंपरा में रचनात्मक भूमिका रही है। मुसलमानों की विध्वसंक भूमिका रही है। हिंदू 'सहिष्णु' और मुसलमान 'असहिष्णु' हैं। हिटलर ने 'नई जीवन शैली' की बात की थी। हिंदू सांप्रदायिक ताकतें भी नई हिंदू जीवन पद्धति की वकालत करते हैं।

आरएसएस की माध्यम रणनीति का यह मुख्य तत्व है कि समाचार, उसकी संरचना एवं कथ्य की प्रस्तुति इस तरह की जाए जिससे "भय, असुरक्षा और संवैधानिक अवमानना के भाव" की अभिव्यक्ति हो। साथ ही, पाठकों श्रोताओं को वह धार्मिक इकाई के रूप में देखते हैं।

एक अन्य पहलू पर विचार करें. यह बृहद माध्यम प्रक्रिया का अंग है। सवाल यह है धर्म का जनमाध्यमों से प्रसारण हो या नहीं? धर्म को जनमाध्यमों के जरिए प्रक्षेपित करने के साथ ही, धर्म अब निजी मसला नहीं रह जाता। यह अंधलोकवाद का अंग बनकर लोकवादी (मासकल्चर) संस्कृति की इकाई के तौर पर भूमिका अदा करने लगता है. जनसमाज में धर्म की शक्ल, एक माल की हो जाती है।

वह लोगों में बिक्री योग्य होता है और राजनीतिक लामबंदी का उपकरण होता है, इसी अर्थ में जनसमाज में ईश्वर मर जाता है! उसकी जगह राजनीति ले लेती है। धर्म का यह उत्तर-आधुनिक रूप है। यह ऐसा धर्म है जो माध्यम संस्कृति को अंतर्भुक्त करके और जनमाध्यमों के सहारे विकास करता है। हमारे देश में जनमाध्यम व्यावसायिक मनोरंजन के माध्यम हैं अत: धर्म का जब जनमाध्यमों से प्रसारण होगा तब धर्म व्यापार हो जाएगा। वह भी मनोरंजन, विखंडन एवं अलगाव की वस्तु हो जाऐगा। धर्म की धर्मनिरपेक्ष धारण यह रही है कि "धर्म निजी मसला है" किंतु जनमाध्यम सार्वजनीन होते हैं। धर्म का उनके माध्यम से प्रसारण धर्म को निजी नहीं रहने देता, उसे सार्वजनीन कर देता है। माध्यमों से प्रसारित धार्मिक अंतर्वस्तु का जब एक बार प्रसारण हो जाता है तो उसे सहज ही काटा नहीं जा सकता।

धर्म का सार्वजनीकरण धर्म को बाजारू और सांप्रदायिक बना देता है। जनमाध्यमों में जब धर्म प्रवेश करता है तब धार्मिक उत्सवों, आस्थाओं, पुराणपंथी प्राचीन प्रतीकों और मिथों को नई इमेज दे देता है। राष्ट्रीय एकता को धार्मिक एकता के रूप में पेश करता है. धर्मनिरपेक्षता और "सर्वधर्म समभाव" को "सर्वधर्म सहभाव" की धारणा के प्रक्षेपण के जरिए अपदस्थ कर देता है। परिणामतः धार्मिक आधारों पर सामाजिक विभाजन की प्रक्रिया पुनर्जीवित हो उठती है। इसी प्रक्रिया में राज्य और धर्म, राजनीति और धर्म के बीच में घालमेल का खतरा पैदा हो जाता है।

जनमाध्यमों के लिए ऑडिएंस का उपभोक्ता के रूप में महत्व होता है। ऑडिएंस जब तक उपभोक्ता है तब तक ही उपयोगी है। ऑडियो कैसेट से धार्मिक संगीत हो या टेलीविजन से धार्मिक प्रसारण हो या वीडियो में बनी धार्मिक फिल्म हो इन सबके निर्माण के पीछे ऑडिएंस की जो धारणा काम करती है, वह ऑडिएंस को धार्मिक इकाई के रूप में निर्मित करते हुए संप्रेषित करती है। यहां उपभोक्ता मूलत: धार्मिक पहचान लिये होता है। इससे धर्मनिरपेक्षता और आधुनिक चेतना के विकास का रास्ता अवरुद्ध होता ह।

ऑडियो-वीडियो कैसेट की बाढ़ का प्रत्यक्ष संबंध टेलीविजन विस्तार से है।

अत: टेलीविजन में धर्म के प्रति जो रवैया उभर रहा है वह मूलत: व्यापक धार्मिक और सांप्रदायिक ऑडिएंस तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। धार्मिक आधार पर राजनीतिक लामबंदी को मजबूत कर रहा है। माध्यम विशेषज्ञ सुधीश पचौरी के अनुसार, "टेलीविजन के माध्यम से धार्मिक उत्सवों और धार्मिक सूचनाओं का प्रसारण सिर्फ सूचनाओं का प्रसारण भर नहीं है, बल्कि इससे भी बढ़कर इसका अर्थ होता है। धर्म के सार्वजनीकरण के कारण धार्मिक समूहों और धार्मिक पहचान के नए आयामों का जन्म होता ह। वह इन्हें संगठनबद्ध करता है। इस प्रक्रिया को सांप्रदायिक संगठनों के हित में किया गया विचारधारात्मक कार्य कहा जा सकता है। अथवा अनजाने ही इन संगठनों को इस प्रक्रिया में व्यापक जनाधार मिल जाता है जो उनके पास आधुनिक युग में कभी भी नहीं था। व्यापक जनाधार, आक्रामकता, असहिष्णुता और अतार्किकता के कारण कालांतर में ये संगठन या धर्मसमूह एक दबाव गुट का कार्य करते हैं और धर्म की राज्य के ऊपर वरीयता मिल जाती है।"

इसके अलावा टेलीविजन ने सांस्कृतिक पर्वों को धार्मिक पर्वों के रूप में प्रसारित किया है। वह होली,दीवाली, क्रिसमस, ईद जैसे सांस्कृतिक पर्वों को धार्मिक पर्व के रूप में पेश करता रहा है। सांस्कृतिक पर्वों के बारे में तथ्यपूर्ण बातें बताने के बजाय, लोकप्रिय किंवदंतियों और अयथार्थपरक लोकप्रिय धारणाओं को ही उनके सारतत्व के रूप में पेश करता है। किंवदंतियों के उन रूपों का चयन करता है जो सांस्कृतिक उत्सव के बजाय धार्मिक उत्सव वाली छवि बनाने में मददगार हों।

यह सांस्कृतिक एवं धार्मिक उत्सवों को एक-दूसरे से अलगाता नहीं है. इसके विपरीत घालमेल पैदा करता है। टेलीविजन इमेज मात्र इमेज नहीं होती अपितु वह विशिष्ट अर्थ संप्रेषित करती है। तदनुरूप दर्शक को बदलती और संगठित-असंगठित करती है। जिस तरह हम विज्ञापन देखते हैं तो मात्र विज्ञापन नहीं देखते. अथवा टेलीविजन जब विज्ञापन पेश करता है तब वह हमारे घर में एक वस्तु पेश करता है और फिर यही वस्तु एक अन्य वस्तु को जन्म देती है। इसी तरह टेलीविजन से जब धर्म का प्रसारण होता है तब धर्म पैदा नहीं होता बल्कि सांप्रदायिकता पैदा होती है। विज्ञापन के माध्यम से कंपनियां दर्शकों से विनिमय मूल्य अर्जित करती हैं. इसी तरह धर्म जब प्रक्षेपित होता है तब दर्शक से अपना वैचारिक-सामाजिक एवं आर्थिक विनिमय मूल्य वसूल करता है. धर्म का जब विनिमय मूल्य प्राप्त होने लगे तो वह धर्म नहीं रह जाता और न ही धार्मिकता का प्रचार कर रहा होता है बल्कि वह सांप्रदायिकता का ही विनिमय करता है. धर्म और धार्मिक विचार दोनों ही अब माल बन जाते हैं. अब धार्मिक सूचना का चेहरा और शरीर दोनों ही बदल जाते हैं.

सांप्रदायिक माध्यम रणनीति में जनता और नेता का भेद नहीं मिलता. इन दोनों में समानता दर्शाते हुए जनता एवं नेता की पहचान को एकमेक कर दिया जाता है. हिंदू एकता को देशभक्ति बताया जाता है, जबकि यह साम्प्रदायिकता है.

साम्प्रदायिक नेता दंगों को स्वतस्फूर्त्त और स्वाभाविक प्रतिक्रिया कहते हैं. वे यह भी आभास देते हैं कि दंगे संगठनविहीन और स्वतस्फूर्त होते हैं. हकीकत में सांप्रदायिक दंगे आकस्मिक लगते जरूर हैं, किंतु वे सुनियोजित एवं संगठनबद्ध ढंग से कराए जाते हैं. वे स्वतस्फूर्त एवं आकस्मिक नहीं होते. असल में, दंगाई ताकतें लोकवादी संस्कृति की खूबियों को अपने पक्ष में इस्तेमाल करने में सफल रही हैं. लोकवादी संस्कृति आम जनता में समर्पण का भाव पैदा करती है. जनसभाओं की शिरकत को निष्क्रिय शिरकत में बदल देती है. फासीवादी ताकतें इन दोनों ही बातों को अपने पक्ष में इस्तेमाल करती हैं.

वे धार्मिक मुक्ति को जनता की मुक्ति कहते हैं, इस आधार पर जनता की एकता का शोषण करते हैं. वे ऐसे नेता को उभारते हैं जो स्वभाव से अविवेकवादी एवं अधिनायकवादी है. बहुसंख्यक समुदाय में भावोत्तेजना पैदा करता है. नस्लपरक दंभ का सृजन करता है. सामूहिक अहंकार को उभारता है. उत्तेजनापूर्ण भाषणों से जनोद्वेग पैदा करता है. उसके पास कोई कार्यक्रम नहीं होता. वह ऐसे कार्यक्रम को चुनता है जो भ्रष्टाचार या अल्पसंख्यक विरोधी हो. भारत में इस तरह के नेता और संगठन को असली समर्थन बड़े औद्योगिक घरानों एवं उपभोक्तावाद से मिल रहा है. वह ऐसी भीड़ का निर्माण करता है जो असहिष्णु एवं घृणा से भरी होती है.

विवेकपूर्ण संवाद की जिसके साथ गुंजाइश ही नहीं होती. हिंसा और घृणा उसका स्थायी भाव है. आस्था उसकी संपत्ति है. संकीर्ण एवं अवैज्ञानिक दृष्टि से संस्कृति, इतिहास एवं राजनीतिक प्रश्नों की व्याख्या उसकी विचारधारात्मक संपत्ति है.

अभी तक इन्हीं विशेषताओं के कारण भारतीय समाज में आरएसएस और मोदी अपील करता रहा है। इतिहासकार अमर्त्यसेन ने सही लिखा है कि "हाल की हिंदू राजनीति का उल्लेखनीय पक्ष सिर्फ यह नहीं है कि इसमें अयोध्या की मस्जिद के बारे में, भारतीय मुसलमानों के उदय के बारे में, खुद हिंदू धर्म की सहिष्णु प्रकृति के बारे में, लोगों के अज्ञान का तिकड़मी ढंग से इस्तेमाल किया गया, बल्कि इसका उल्लेखनीय पक्ष यह भी है कि खुद हिंदू नेताओं द्वारा भारतीय सभ्यता की कहीं बड़ी उपलब्धियों को, यहां तक कि स्पष्ट रूप से हिंदू योगदानों को भी अनदेखा कर संदिग्ध विशेषताओं को ग्रहण किया गया। उनके लिए न तो उपनिषदों या गीता की बौध्दिक ऊंचाइयों का कोई अर्थ है, न ब्रह्मगुप्त या शंकर या कालिदास या शूद्रक की सूक्ष्मदर्शिता का. उनके लिए राम की मूर्ति और हनुमान की छवि के सामने माथा टिकाना ज्यादा महत्वपूर्ण है। उनका राष्ट्रवाद भारत की तर्कवादी परंपराओं की भी अनदेखी करता है।

यह वह देश है जिसने बीजगणित, ज्यामिति तथा खगोलशास्त्र के क्षेत्र में कुछ कदम सबसे पहले उठाए थे। यहां दशमलव प्रणाली विकसित हुई, यहां आरंभिक दर्शन, चाहे धार्मिक हों या अधार्मिक, असाधारण ऊंचाइयों पर पहुंचा, यहां लोगों ने शतरंज जैसे खेलों का आविष्कार किया, सबसे पहले यौन शिक्षा शुरू हुई और पहले-पहल राजनीतिक अर्थव्यवस्था का व्यवस्थित अध्ययन हुआ. लेकिन हिंदू लड़ाके इन सबके बजाय, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भारत को मूर्तिपूजकों, धर्मोन्मादियों, युध्दोन्मत्त भक्तों और धार्मिक हत्यारों के ही देश के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

जाहिर है कि यही भारत के सिलसिले में जेम्स मिल की साम्राजी दृष्टि थी। इस दृष्टि के हिसाब से भारत एक बौध्दिक रूप से दिवालिया, किंतु जघन्य विचारों और बर्बर सामाजिक प्रथाओं से भरा हुआ देश है। अतीत में भारतीय राष्ट्रवादियों ने इस छवि की प्रामाणिकता को चुनौतियां दी थीं, लेकिन आज के हिंदू राष्ट्रवादी, जेम्स मिल को सही साबित करने पर तुले हुए हैं।"

अमर्त्यसेन की राय है समकालीन हिंदू राजनीति की सबसे बड़ी कमजोरी विभिन्न स्तरों पर व्याप्त अज्ञान पर उनकी निर्भरता में है। यह निर्भरता, लड़ाकू कठमुल्लापन को बढ़ाने के लिए लोगों के धार्मिक भोलेपन को भुनाने से लेकर संकीर्ण राष्ट्रवाद और सांप्रदायिक फासीवाद को बढ़ावा देने तक भारत के अतीत की विकृति तक जाती है। सीधे-सादे और सूक्ष्म दोनों तरह के अज्ञान पर यह बुनियादी निर्भरता, इस संकीर्णतावाद की सबसे बड़ी कमजोर कड़ी है। इसी कड़ी पर टकराव की स्थिति खास तौर से प्रतीक्षित है।

वे (संघी) कलाकारों-लेखकों से कह रहे हैं तुम्हारा काम लिखना है, अभिनय करना है, अपने काम में ध्यान दो, देश में क्या हो रहा है उस पर मत बोलो, मोदी सरकार या कोई राज्य सरकार क्या कर रही है, कोई गुण्डादल क्या कर रहा है उस पर मत बोलो, बोलोगे तो जान लो फिल्म नहीं चलने देंगे,गालियों की गंगा बहा देंगे, धंधा नहीं करने देंगे, धंधा करना है तो मुँह बंद रखो, यानी ये मोदीपंथी-आरएसएस-के लोग लेखकों-बुद्धिजीवियों-अभिनेताओं को मुँह बंद करके रखना चाहते हैं।

वे चाहते हैं देश से विच्छिन्न होकर लेखक -कलाकार रहें, जिससे ये लोग देश को लूट सकें, आम जनता पर जुल्म कर सकें,आम लोगों के हकों पर हमले बोल सकें।

इनका मानना है इनको पांच साल लूट का मौका दिया है जनता ने इसलिए उनको चुपचाप लूटने दो. सवाल यह है लेखक-कलाकार इनके पापों पर क्यों चुप रहे? लेखकों का दायित्व है कि वे बोलें और इनको कदम- कदम पर बेनकाब करें। ऋस्स के फिल्मी रतन हैं अनुपम खेर, गजेन्द्र चौहान-मधुर भंडारकर; कम्युनिस्टों के रत्न हैं , सौमित्र चटर्जी, मृणालसेन, बलराज साहनी, उत्पल दत्त, विमल राय, सलिल चौधरी, ऋत्विक घटक आदि.

कोई भी सामान्य भारतीय आरएसएस और कम्युनिस्टों में भेद जानना चाहे तो इन लोगों के जरिए जान सकता है कि कम्युनिस्टों ने देश के लिए क्या दिया और आरएसएस की विचारधारा से प्रभावित कलाकारों ने क्या सृजित करके दिया.

वे पूछते हैं कम्युनिस्टों ने देश में क्या किया, हम पूछते है आरएसएस वालों ने देश के लिए क्या किया?

राहुल सांकृत्यायन- यशपाल -भीष्म साहनी जैसे महान रचनाकार, रामविलास शर्मा-नामवर सिंह जैसे आलोचक जिस विचारधारा के गर्भ से निकले हों, उसके बारे में ये संघी कहते हैं कि "साम्यवाद समाज का शत्रु है !"

सवाल उठता है क्या इस तरह के लेखकों के बिना भारत के सांस्कृतिक उन्नयन की कल्पना कर सकते हैं? सत्ता और कारपोरेट घरानों की दौलत पर पलने वाला आरएसएस बताए उसके पास सामाजिक विभाजन और सामाजिक घृणा के अलावा क्या है ?

भारत में घृणा की परंपरा रही है, यही वजह थी कि प्रेम की परंपरा निर्मित करने की जरूरत पड़ी। मोदीजी और बटुक संघ ने अपने राजनीतिक स्वार्थों के लिए घृणा की परंपरा को चुना है, भारत में जातिप्रथा घृणा की परंपरा का संस्थागत रूप है। इसके अलावा विभिन्न किस्म के घृणा रूपों की परंपरा समाज में प्रचलन में है, यहीं से मोदी एड कंपनी अपने लिए ईंधन बटोरती है। घृणा के सभी किस्म के रूपों का हम सबको मिलकर प्रतिवाद करना चाहिए।

सवाल यह है समाज का एक बड़ा वर्ग मोदी से इतना प्रभावित क्यों हैं? जबकि हमें उससे घृणा करनी चाहिए। इसका पहला बड़ा कारण है हम अपनी त्वचा से ही प्यार नहीं करते हैं, खूब ब्लीच लगाते हैं और इस तरह घृणा को त्वचा पर लगाते हैं, ब्लीच से नफरत न करके प्यार करते हैं और यहीं से हमारे मन में घृणा के नायक जाने-अनजाने दाखिल हो जाते हैं। मोदीजी 'संघ की सहमति' से देश चला रहे हैं, पंडित नेहरू ने 'समाज की सहमति' से देश चलाया।

मोदी के लिए 'मैं' का महत्व है , नेहरूजी के 'देश' का महत्व था। "मोदी-मोदी" की जय-जयकार के पीछे सक्रिय घृणा की आंधी का सामाजिक आधार हैं वे युवा, जिनकी उम्र बीस-तीस साल के बीच है। यह वह वर्ग है जो इन दिनों सबसे ज्यादा नार्सिस्ट है।

यह वह युवा है जो "मैं" के नशे में चूर है, मैं पढा हूँ, मैं ज्ञानी हूँ, मैं इंजीनियर हूँ..आदि की भाषा में बोलने और सोचने वाले युवाओं को, मोदी सबसे ज्यादा अपील कर रहे हैं।

मोदी के भाषणों की सब लोग प्रशंसा करते हैं,

शेष पेज सात पर